भारतीय संस्कृति और यज्ञ की अवधारणा

*डॉ. अनुजा शर्मा

प्रस्तावना

यज्ञ शब्द का अर्थ भारतीय संस्कृति में यज्ञ का महत्वपूर्ण स्थान है। व्याकरण की दृष्टि ये शब्द की उत्पत्ति दो प्रकार से होती है– धातुज और कुछ धातुज तथा अधातुज। इन दोनों मतों से यज्ञ शब्द धातुज माना गया है। ष्यज्ञः शब्द की उत्पत्ति यज धातु से 'यज–याच–यत–बिच्छ–प्रच्छ– रक्षोनड्' इस पाणिनीय सूत्र से न प्रत्यय होकर यज्ञ शब्द बनता है। नन्त इस पाणिनीय लिड्गानुशासन से यज्ञ शब्द पुलिंग भी होता है। 'नड्' प्रत्यय का भाव अर्थ में होता है किन्तु 'कृत्यल्युटो – बहुलम्' इस सुत्र पर 'बहुलग्रहणं कृन्मात्रास्यार्थव्यमिचारार्थम्' इस सिद्धांत से कृदन्त के सभी प्रत्ययों का अर्थ आवश्यकतानुसार परिवर्तित किया जा सकता है। निरूक्तकार महर्षि यास्क ने यज्ञ धातु का अर्थ देवपूजा किया है। इनके अनुसार यज्ञ में यज्ञकर्ता आराध्य से अनेक प्रकार की याचना करता है। धातु पाठ में यज धातु का पाठ किया गया है। धातवः अनेकार्थाः इस वैयाकरण सिद्धांत के अनुसार कतिपय आचार्यो ने 'यज–देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु' इस पाणिनीय सूत्र के अनुसार यज् धातु का देवपूजा संगतिकरण और दान ये तीन अर्थ है। देवपूजा में देव शब्द बहवर्धक है और पूजा का अर्थ सत्कार से अन्न से, जल, वस्त्र, स्थान नमस्कार तथा यथायोग्य उपयोग की वस्तुएँ अर्पित करके देवताओं की पूजा की जाती है। निरूक्त (7.15) में वर्णित 'देवो दानाद् व दीपनाद् वा धुस्थानों भवतिति वा' देव शब्द से स्पष्ट एवं शास्त्रीय अर्थ को छोड़कर जन सामान्य की दृष्टि से कहे तो देव वह है जो देता है, बदले में कुछ चाहता नहीं। सूर्य देवता, वायुदेवता, वृक्ष देवता पृथिवी देवता आदि जड़ देवता जीवन देते हैं, बदले में कुछ चाहते नहीं। चेतन देवों में माता–पिता, आचार्य, अतिथि, सन्त आदि आते है तथा समस्त देवों का परमपिता परमेश्वर है। ये सभी अर्थात् यथोचित व्यवहार सम्मान, सुरक्षा द्वारा अधिक कल्याण ग्रहण करना चाहते हैं। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है– 'अग्निर्वैमुखं देवानाम्' इन जड़ देवों का मुख अग्नि है, क्योंकि अग्नि में डाले हुए पदार्थ, पदार्थ विज्ञान के अनुसार नष्ट नही होते हैं अपितु रूपान्तरित होकर सूक्ष्म होकर शक्तिशाली बनते हैं। सूक्ष्म होकर अन्तरिक्ष में वायु के माध्यम से फैलते हैं। 'देवाः रजयन्ते – पूज्यन्तेनेनेति यज्ञः ' इस प्रकार यज्ञ की उत्पत्ति की जा सकती है। क्योंकि यज्ञ में अनेक सामग्री व यज्ञ की आहुत्तियों के द्वारा देवों की पूजा की जाती है। अग्नि, जल, वायु आदि का प्राणियों के कल्याण के लिए उचित उपयोग देवपूजा है और इन्ही के द्वारा प्राणिमात्र के जीवन को संकट में डालना देव अपूजा है।

संगतिकरणः संगतिकरण का अभिप्राय है। देवों अथवा विद्वानों की संगति करना या यथोचित गुणों के मेल – विरोध– ज्ञान की संगति से शिल्पादि विद्या का प्रत्यक्षीकरण करना तथा नित्य विद्वानों के समागम का अनुष्ठान।

'देवैः सह यजन्ते – संगतिकुर्वन्ति अनेन ऋष्य इति यज्ञ' इस अर्थ में इस प्रकार की उत्पत्ति होती है, क्योंकि पुरुष यजन के समय मनुष्यत्व को छोड़कर देव हो जाता है। उस अवस्था में याजक का देवों के साथ मिलन होता है।

दानः दान का अभिप्राय है– देना । स्वयमुपार्जित धन–सम्पति पर दूसरे का स्वामित्व करा देना। दूसरों के कल्याण के लिए इसे प्रयुक्त करना। इस अर्थ में यज्ञ शब्द की उत्पत्ति अनेक प्रकार से की जा सकती है। यथा 'देवेभ्यः इज्यन्ते' अर्थात् जिसके द्वारा देवों के लिए अनेक प्रकार के यजन किये जाते है वह यज्ञ कहलाता है। निरूक्तकार यास्क एवं अन्य निरूक्तकारों के अनुसार यज्ञ शब्द का अर्थ याचन है क्योंकि यज्ञ के किसी फल विशेष की याचना के लिए किया जाता है तथा देवता भी याचक को प्रसन्न होकर वरदान के रूप में अनेक वस्तुएं दान में देते हैं ।

इस कारण भी इसे यज्ञ कहते हैं। इस विषय में निरूक्तकार ने अपने मत को स्पष्ट करते हुए कहा है– 'यज्ञ कस्मात् प्रख्यातं यजति कर्मेति नैरुक्ताः' अर्थात् यज्ञ शब्द याजन अर्थ में प्रसिद्ध ही है, यह सभी निरूक्तकारों का एकमत है।

महर्षि यास्क यज्ञ का सम्बन्ध यजुर्वेद से बताते हुए कहते हैं कि यजुर्वेद के मन्त्रों के द्वारा यह पूर्णता को प्राप्त कराया जाता है। इसलिए इसे यज्ञ कहते हैं। यज्ञ शब्द को अग्रेजी भाषा में बतपपिबम कहते हैं। इसका अर्थ हम त्याग का ग्रहण करें तो कुछ ठीक है, लेकिन इस शब्द से नरबलि या पशुबलि के समान किसी अर्थ का यदि ग्रहण करेंगे तो यज्ञ के अर्थ से विपरीत ही होगा। आचार्य सायण ने यज्ञ शब्द का अर्थ देवता विशेष के लिए अग्नि में हव्य पदार्थों का डालना किया है। कात्यायन के अनुसार देवताओं के निमित हव्य पदार्थ का त्याग यज्ञ कहलाता है। मत्स्य पुराण के अनुसार यज्ञ शब्द का अर्थ है कि जिस कर्म विशेष वेदमन्त्र, ऋत्विज, हवनीय द्रव्य और दक्षिणा इन पाँचों का उसे याग कहते हैं।

यज्ञ का स्वरूपः

देवता, संयोग हो

जीवन

प्राचीन भारतीय काल के वैदिक वाङ्मय से ही यहाँ के जन में यज्ञों की प्रमुख भूमिका रही है। इसलिए यज्ञ मनुष्य के व्यवहार और इतिहास से भी बहुत अधिक सम्बन्ध रखता है यज्ञ का अस्तित्व मनुष्य जीवन से पूर्व का माना जाता है। इनमें चार प्रमुख पुरोहितों होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा का उल्लेख मिलता है। ऋचाओं का उच्चारण कर उनकी पुष्टि होता करता है। एक शक्वरी में गेय ऋचाओं का गान उद्गाता करता है। ब्रह्मा यज्ञ सम्बन्धी विधि को बताता है। अध्वर्यु यज्ञवेदि को बनाता है। ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में ही यज्ञ का उल्लेख किया गया हैऔर ऋग्वेद के अन्तिम मण्डल में यज्ञों को प्रथम कर्त्तव्यों में गिना हैं। प्रसिद्ध वैदिक कोश निघण्टु में यज्ञ के 15 पर्यायवाची शब्द उल्लिखित किए हैं, यथा–यज्ञ वेनः अध्वर, मेघ, विद्यः नार्यः सवनम् होत्रा, देवताता, इष्टि, मखः इन्दुः प्रजापतिः धर्मः (इति पंच दश यज्ञनामानि) ब्राह्मण–ग्रन्थ यज्ञपरक शास्त्र है। वस्तुतः प्रत्येक यज्ञ की यजन विधि में अन्तर होता है, फिर भी यज्ञों में समान रूप से अनुवर्तन करने वाले तथ्यों को आधार मानकर यज्ञ के सामान्य स्वरूप पर विचार करना चाहिए। यज्ञ प्रकृति एवं विकृति के आधार पर दो प्रकार के हैं। जिसमें याग के समस्त अंगो का सम्यक् रुप से विधान किया जाता है, उसे प्रकृतियाग कहते हैं तथा जिसमें केवल विकृतियों का वर्णन होता है, उसे विकृति याग कहते है। 'यजुभियजन्ति' इस वचन के अनुसार यजुः से जिस यज्ञ का निरुपण किया है, उसका निर्देश यजुर्वेद के

उपक्रम में 'श्रेष्ठतमाय कर्मणे' से श्रेष्ठतम कर्म के रूप में किया जाता है और उपसंहार में 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि' के रुप में निष्काम कर्म का संकेत किया जाता है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार यज्ञ देवताओं का अन्न है– यज्ञों हि देवतानामन्नम् यज्ञ में देवताओं को जो अन्न अर्पित किया जाता है उसको देवता प्राप्त करके अत्यन्त प्रसन्न होते हैं– 'अग्निर्हि देवानां मुखम् ' के अनुसार अग्नि में दी गई आहुत्ति वस्तुतः देवताओं के मुख में ही दी जाती है। यज्ञिको के अनुसार आहुत्ति अग्नि में प्रविष्ट होकर अमृत रुप में बदल जाती है और अमृतभोगी देवताओं के लिए वह जीवनधार पदार्थ बन जाता है। समस्त यज्ञों का अनुष्ठान पंचाग्नियों आहवनीय, गार्ह्यपत्य, आवस्थ, दक्षिण एवं सभ्य में सम्पादित किया जाता है। इन अग्नियों का विभाजन श्रोत एवं स्मार्त नामक अग्नियों में किया जाता हैं। श्रग्नियों में आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि आते हैं। इस श्रौताग्नि में सम्पन्न यज्ञों को वैदिक अथवा श्रौतयज्ञ कहते है तथा स्मार्ट अथवा ग्रह्मग्नि में सम्पन्न यागों को ग्रह्मयज्ञ अथवा पाकयज्ञ कहते हैं। श्रौतसूत्रों में श्रीतयज्ञों का वर्णन है, जबकि ग्रह्मसूत्रों में स्मार्त यागों का वर्णन मिलता है।

यज्ञ का महत्त्व

यज्ञ वैदिक भारतीय साहित्य की संस्कृति का प्रधान अंग हैं। यज्ञानुष्ठान एवं याज्ञिक क्रियाओं के द्वारा सम्पूर्ण संसार का कल्याण होता है। यज्ञ में लोक–कल्याण की भावना विद्यमान रहती है। अतः लोक कल्याण की दृष्टि से सभी युगों में यज्ञ की नितान्त आवश्यकता रही है। यज्ञ के महत्त्व को स्वीकार करते हुए आधुनिक वैज्ञानिकों ने अपने शोध कार्यों से यह सिद्ध किया है कि यज्ञ पर्यावरण सुद्धि का सर्वोत्तम साधन है। यह सम्पूर्ण संसार को पवित्र करने वाला है, ऐसा वाजसनेयि संहिता में कहा ग भुवनस्य नाभिः' (यजु 23 / 62) इस यज्ञ को भुव जो पदार्थ अग्नि में डालते हैं, वे सूक्ष्म होकर ऊर्जस्वित होकर शक्ति सम्पन्न होकर द्युलोक तक महाराज ने स्पष्ट लिखा है– 'अग्नीप्रास्ताहुतिः ...प्रजाः । (3/76) अर्थात् अग्नि में अच्छी प्रकार डाली गयी घृत आदि की आहुत्ति सूर्य को प्राप्त होती है, सूर्य की किरणों से वातावरण में मिलकर अपना प्रभाव डालती है, फिर सूर्य से वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न पैदा होता है, उससे प्रजाओं का पालन–पोषण होता है। गीता में वर्णित है– 'अन्नाद् भवन्ति ... कर्मसमुद्भवः' गीता 3/14 अर्थात् सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है, वृष्टि यज्ञ से होती है तथा यज्ञ तो हमारे कर्मों के करने से ही सम्पन्न होगा। निश्चय से देवयज्ञ ही वह साधन है जिसके द्वारा हम यथोचित रूप से चेतन देवों का सम्मान करते हैं तथा जड़ देवताओं की पूजा करते हैं। अग्नि में डाले गये पदार्थ सूक्ष्म होकर वृक्ष देवता वायु देवता पृथिवी देवता, सूर्य देवता आदि सभी लाभकारी देवों शुद्ध, स्वस्थ पवित्र रखते हैं और ये देव हमें स्वस्थ एवं सुखी बनाते हैं। गीता में इस तथ्य को कितने स्पष्ट शब्दों में वर्णित किया है– 'देवान्भावयतानेन परमवाप्स्यथ' 3/11 अर्थात् इस यज्ञ के द्वारा (अग्नि के द्वारा) तुम जड़ चेतन देवों को उत्तम बनाओ तब वे देव तुम्हारा कल्याण करेंगे। इस प्रकार परस्पर एक दूसरे को स्वस्थ रखने से ही परम कल्याण की प्राप्ति होगी। यज्ञ का अत्यन्त महत्त्व है, यही सच्ची देवपूजा है। इसलिए महाभारत काल पर्यन्त यज्ञ का ही विधान प्राप्त होता है। किसी मूर्तिपूजा आदि का पद्धतियों में वायु, जल, अन्न, वृक्षादि पर्यावरण के दोषों को दूर करने का सामर्थ्य नहीं है। यज्ञ से, यथोचित व्यवहार से जल – वायु शुद्ध होगा। अतः सच्चे अर्थो में यज्ञ ही देवपूजा है, प्रतिदिन दैनिक यज्ञ करके इस पूजा को सम्पन्न करना हमारा नैतिक कर्त्तव्य है। यज्ञों की भौतिक या आध्यात्मिक महत्ता असाधारण है। भौतिक या आध्यात्मिक जिस क्षेत्र पर दृष्टि डाले उसी में यज्ञ की महत्त्वपूर्ण उपयोगिता दृष्टिगोचर होती है। वेद में ज्ञान, कर्म, उपासना तीन विषय हैं। कर्म का अभिप्राय कर्म काण्ड से है। कर्मकाण्ड यज्ञ को कहते हैं। सभी वेद मन्त्र ऐसे हैं जिनकी शक्ति को प्रस्फुरित करने के लिए उनका उच्चारण करते हुए यज्ञ करने की आवश्यकता होती है। यज्ञ की उष्मा मनुष्य के अन्तकरण पर देवत्व की छाप डालती है। जहाँ यज्ञ होते हैं वह भूमि एवं प्रदेश सुसंस्कारों की छाप अपने अन्दर धारण कर लेता है और वहाँ जाने वालो पर भी दीर्घ काल तक प्रभाव डालती रहती है यजुर्वेद में

'यज्ञों वै श्रेष्ठतमं कर्म' एक उक्ति आती है, जिसका अर्थ होता है–यज्ञ संसार के श्रेष्ठतम कार्यों में से एक होता है शास्त्रकार बताते हैं जहाँ गायत्री ज्ञान मार्ग के माध्यम से व्यक्ति को अज्ञान से हटाकर उसे बन्धन मुक्ति की और ले जाती है, वहाँ यज्ञ देवपूजा के माध्यम से भाव योग की संगतिकरण के माध्यम से ज्ञानयोग की एवं दान के माध्यम से कर्मयोग की एक समग्र साधना का प्रतीक है।

यज्ञों की संख्या व उनके भेद

यज्ञ कई प्रकार के होते हैं। चारों वेदों, श्रौतसूत्तों तथा गृह्यसूत्रों में यज्ञों की संख्या इक्कीस बताई गई है। गोपथ ब्राह्मण भी इसी को प्रमाण मानता है। ऋग्वेद में यज्ञ की तीन संस्थाएँ बताई गई हैं– पाक यज्ञ, हविर्यज्ञ तथा सोमयज्ञ इनके अन्तर्गत सात पाकयज्ञ, साता हविर्यज्ञ एवं सात सोमयज्ञों का परिचय प्राप्त होता है। इन वैदिक यज्ञों को दो भागों में बाँटा गया है–श्रीतयज्ञ तथा गृहायज्ञ । श्रीतयज्ञों का वर्ण श्रौतसूत्रों में तथा गृह्ययज्ञों का वर्ण गृह्यसूत्रों तथा धर्मसूत्रों में मिलता है। यहाँ केवल गृहस्थ के लिए उपयोगी कर्मों का विधान है। धर्मशास्त्रों में मानव समाज के लिए विशेष कर्त्तव्यों का वर्णन भी किया जाता है। सोमसंस्था तथा हविर्यज्ञ संस्था श्रीतयज्ञों के अन्तर्गत आती है। गृह्य व स्मतियज्ञ, पाकसंस्था के नामसे प्रसिद्ध है। इस प्रकार निष्कार्षतः यह माना गया है कि यज्ञ की प्रमुख तीन संस्थाएँ हैं और पुनः तीनों संस्थाओं को सात–सात यज्ञों में विभक्त किया गया है, जो इस प्रकार हैः–

पाकयज्ञ संस्था

गृह्यग्नि में सम्पादित होने वाले याज्ञिक कृव्य होम इत्यादि में जिन पके हुए पदार्थों की हवि दी जाती है, उन्हें पाकयज्ञ कहते हैं। इन यज्ञों में पके हुए अन्न की आहुति या बलिदान की जाती है। ये कृत्य नित्यप्रति गृहस्थों के द्वारा सम्पादित किये जाते हैं। औपासन होम वैश्वदेव, अष्टाका श्राद्ध, मासिकश्राद्ध, श्रवणाकर्म, पार्वण, शूलगव आदि सात पाकयज्ञ संस्थाएँ हैं।

हविर्यज्ञ संस्था

इस संस्था के यज्ञ गार्हपत्य अग्नि में सम्पादित किये जाते हैं, जिसमें चरू, पुरोडाश इत्यादि की हवि दी जाती है। इसीलिए ये यज्ञ हविर्यज्ञ कहलाते हैं। ये यज्ञ विशेष अवसरों पर ही किये जाते हैं। इन हविर्यज्ञों की संस्था भी यद्यपि सात मानी गई है तथापि ब्राह्मण–ग्रन्थों एवं सूत्रग्रन्थों में निम्नलिखित यज्ञों को इस संस्था के अन्तर्गत परिगणित किया गया है :– अग्निहोत्र, अग्न्याधान, दर्शपूर्णभास, आग्रायण, पुनराधेय, चातुर्मास्य, निरूढ – पशुबन्ध तथा सौत्रामणि आदि ।

सोमयज्ञ संस्थाः

जिस यज्ञ में देवताओं को सोमरस की आहुति दी जाती है, उसे सोमयज्ञ कहा जाता है। 'शतपथ ब्राह्मण' में सोमयज्ञ का विस्तृत उल्लेख मिलता है। इस यज्ञ में तीनों प्रकार की अग्नि अनिवार्य होती है। सोमयज्ञ संस्था में प्रमुख रूप से यज्ञों की संख्या यद्यपि सात ही मानी गई है तथापि शतपथ ब्राह्मणादि ग्रन्थ में निम्नलिखित यज्ञों को इस संस्था का भाग माना गया है :– अग्निष्टोम अत्यग्निष्टोम उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिशत्र व आप्तोर्याम आदि प्रमुख रूप से अग्निष्टोम को सोमयज्ञों की प्रकृति माना गया है।

श्रीतयज्ञों में समाहित यज्ञों के प्रत्येक के तीन–तीन भेद होते हैं :– नित्ययज्ञ, नैमितिक यज्ञ तथा काम्ययज्ञ । नित्य यज्ञ वे होते हैं जो गाय, पशु, धन आदि के लिए किये जाते हैं। विभिन्न कामनाओं से ओतप्रोत होकर विभिन्न यज्ञ किये जाते हैं। फिर भी श्रौतयज्ञों के तीन–तीन भेद हैं। वहाँ पहले स्थानीय पदार्थ जो मानवीय भोग्य है, जैसे तिल, चावल, घृत, दही तथा दुग्ध आदि पाकयज्ञ के नाम से जाने जाते हैं। जो द्रव्य सोम, तृण आदि हैं वे सोमयज्ञ में गिने जाते हैं तथा जिन यज्ञों में बकरी इत्यादि पशुओं का प्रयोग किया जाता है, पशुबन्ध यज्ञ कहे जाते हैं।

***सह–आचार्य**
संस्कृत विभाग
राजकीय महाविद्यालय, टोंक (राज.)

सन्दर्भ सूची

1. अष्टाध्यायी सूत्रपाठ (पाणिनीय) पाणिनि सम्पादक ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, रामलाल कपूर ट्रस्ट, गुरू बाजार, अमृतसर, चतुर्थ संस्करण– 1961 ।
2. ऋग्वेद संहिताः सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी सूरत 1957 ।
3. ऐतरेय ब्राह्मणः गंगा प्रसाद उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
4. गोपथ ब्राह्मण डॉ. गास्ट्रा लक्अउन, 1919
5. छान्दोग्योपनिषद्ः वैदिक मन्त्रालय, अजमेर, 1933
6. तैत्तिरीय ब्राह्मणः भाग 1,2,3 आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पुना, 1934
7. निरूक्त (पास्क) दुर्गाचार्यवृत्तिसहित, बम्बई संस्करण 1982 ।
8. शतपथ ब्राह्मणः गंगा प्रसाद उपाध्याय, प्राचीन वैज्ञानिकाध्ययन अनुसंधान संस्थान, दिल्ली 8, 1967, 1969 44 3/3